6
सामाजिक रूढ़ियाँ नारी शिक्षा में बाधक

प्रेम कपाड़िया*

प्रगतिशील समाज की दोनों धुरियों महिला और पुरुष को एक समान रूप से शिक्षित होना होगा। यदि इनमें अंसतुलन हो तो निश्चित ही विकास की गति पर भी इसका प्रभाव देखा जा सकेगा। आज के वैश्विक परिवेश में दक्षिण देशों में यह असंतुलन स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। प्रस्तुत आलेख के माध्यम से एशियाई देशों में नारी शिक्षा की स्थिति तथा उसके निदान के लिए सुझाए गए उपायों पर चर्चा की गई है।

दक्षिण एशिया में शिक्षा का लैंगिक अंतर दुनिया के अन्य क्षेत्रों की तुलना में सबसे ज़्यादा है। एक शिक्षित महिला न सिर्फ़ अपने और अपने परिवार के जीवन स्तर को बेहतर बना सकती है, बल्कि समाज में अपना आर्थिक योगदान भी देती है। दक्षिण एशिया के विकासशील देशों के लिए महिलाओं का शिक्षित होना इसलिए भी ज़रूरी है कि वे अपने देश की बढ़ती हुई आबादी पर काबू पाने और गरीबी को दूर करने में सहायक सिद्ध हों। एक महिला का शिक्षित होना सिर्फ़ इसलिए ज़रूरी नहीं है कि उससे होने वाले लाभों की सूची बहुत बड़ी है, बल्कि सबसे ज़्यादा महत्वपूर्ण यह है कि शिक्षा हासिल करना उसका मानवाधिकार है। सांस्कृतिक परिवेश, संसाधनों की कमी और नीतिनिर्धारकों की संकुचित सोच इस मानवाधिकार के आगे आड़े आती है। मानवाधिकार विकास रिपोर्ट दक्षिण एशिया 2002 में दक्षिण एशियाई लड़कियों और महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति का खुलासा भावी योजनाओं के निर्माण में मददगार साबित हो सकता है।

दक्षिण एशिया के प्रौढ़ अनपढ़ों की संख्या में 50 फीसदी से ज़्यादा महिलाएँ हैं। दो-तिहाई से ज़्यादा लड़कियाँ प्राथमिक पाठशाला से बाहर हैं। पाँचवी जमात से पहले ही बीच में शिक्षा छोड़नेवाली लड़कियों की संख्या करीब 40 फीसदी है। व्यावसायिक शिक्षा में तो बहुत कम लड़कियों का नाम दर्ज हो पाता है। दक्षिण एशिया के संदर्भ में गौरतलब तथ्य यह है कि जहाँ 1970 और 1997 के बीच विकासशील देशों की महिला साक्षरता दर में 32 से 63 फीसदी तक का इज़ाफा हुआ, वहीं इस क्षेत्र में औसतन 17 से 37 फीसदी तक की वृद्धि हुई। दक्षिण एशिया की कुल अनपढ़ जनसंख्या में 63 फीसदी महिलाएँ हैं। पाकिस्तान और नेपाल में महिला साक्षरता दर का आँकड़ा 25 और 21 फीसदी है। नेपाल, बांग्लादेश, पाकिस्तान

* राज्य संसाधन केंद्र, इंदौर (म.प्र.) त्रैमासिक पत्रिका 'जन साक्षरता' (जून 2004) से साभार

और भूटान में लड़कियाँ, लड़कों की तुलना में बहुत कम वर्ष तक स्कूल में रहती हैं, जबकि श्रीलंका और मालद्वीप में स्थिति इनकी तुलना में बेहतर है। भारत में बिहार, उत्तर प्रदेश और राजस्थान में महिला साक्षरता दर की स्थिति बहुत अच्छी नहीं है, जबकि तमिलनाडु और केरल में स्थिति बहुत अच्छी है। केरल का उदाहरण दर्शाता है कि किस प्रकार एक सीमित आय वाला राज्य उचित नीतियों और दृढ़ राजनैतिक इच्छाशक्ति के बूते पर महिलाओं के शिक्षा हासिल करने के रास्ते में खड़ी रुकावटों को दूर कर सकता है।

दरअसल लड़कियों की शिक्षा के रास्ते में हरेक देश के अलग-अलग कारण होते हुए भी कुछ साझा बाधाएँ भी हैं। दक्षिण एशिया में माता-पिता लड़कियों की स्कूली शिक्षा को ज़्यादा महत्त्व नहीं देते और सार्वजनिक एवं निजी शिक्षा सेवाएँ सामुदायिक ज़रूरतों को पूरा करने वाली शिक्षा मुहैया नहीं करातीं। हालाँकि बदलते हुए सामाजिक और आर्थिक परिदृश्य में दक्षिण एशिया के शहरी स्कूलों में आज अतीत की तुलना में ज़्यादा लड़कियाँ नज़र आती हैं, लेकिन अधिकांश लड़कियों द्वारा मासिक धर्म के शुरू होने पर स्कूल छोड़ने की पारंपरिक प्रथा आज भी प्रचलित है। माता-पिता इस आयु वर्ग की लड़कियों की शादी बहुत जल्दी कर देना चाहते हैं। मध्यप्रदेश के टीकमगढ़ ज़िले में लड़कियों की 8-9 आयु वर्ग में शादी हो जाना, उन्हें पहली या दूसरी कक्षा से आगे पढ़ने से रोकता है। कर्नाटक के अध्ययन बताते हैं कि ज़्यादा पढ़ी-लिखी लड़कियों के लिए ज़्यादा शिक्षित वर ढूँढ़ना भी मुश्किलों को बढ़ाता है। माता-पिता इस मुश्किल का हल लड़कियों को कम तालीम देने और जल्दी विवाह करने में तलाशते हैं। भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में 75 फीसदी लड़कियों की शादी क्रमवार 19, 22 और 17 साल की उम्र में ही हो जाती है। नेपाल में करीब 50 फीसदी लड़कियों के हाथ 19 साल की उम्र में पीले कर दिए जाते हैं।

इन मुश्किलों के अलावा शिक्षा पर होनेवाला खर्च भी लड़की की शिक्षा के अवसरों को सिकोड़ता है। सरकार द्वारा शिक्षा पर ज़्यादा-से-ज़्यादा रकम खर्च करने के बावजूद भी स्कूली शिक्षा, मुफ़्त शिक्षा नहीं बन सकी है। अभिभावकों को किताबों और वर्दी का खर्च उठाना पड़ता है।

हाल में दिल्ली में हुई एक जन सुनवाई में लोगों ने शिकायत दर्ज कराई कि दखिले के वक्त हलफनामा भरवाने के लिए बच्चों से रुपए वसूले जाते हैं। बच्चों के स्कूल में बाथरूम तक नहीं है। दिल्ली में एक संस्था द्वारा करवाए गए सर्वेक्षण से यह तथ्य उभरकर सामने आया कि कई अभिभावक अपनी किशोर लड़कियों को स्कूल में शौचालय की व्यवस्था न होने के कारण भी स्कूल नहीं भेजते हैं। गरीब परिवारों की योग्य लड़कियाँ स्कूली खर्च और दूसरी दिक्कतों के कारण शिक्षा से वंचित रह जाती हैं, जबकि वे सीमित संसाधनों के बाद भी लड़के की शिक्षा को प्राथमिकता देते हैं। दक्षिण एशिया के सांस्कृतिक-सामाजिक परिवेश में लड़कियों के सतीत्व को ज़्यादा महत्त्व दिया जाता है। इसलिए अभिभावक लड़कियों को पुरुष अध्यापक

से पढ़ने की इजाज़त देने के पक्ष में नहीं होते। वे घर से ज़्यादा दूर होस्टल में भी नहीं भेजना चाहते। लड़कियों को शादी से पहले पुरुषों से दूर रखने की कोशिश की जाती है। स्कूल की स्थिति, महिला विद्यार्थियों के लिए सुविधाएँ, अध्यापक, पाठ्यक्रम और परीक्षा नीतियाँ आदि उन तत्वों के हिस्से हैं, जो शिक्षा के लैंगिक अंतर में अहम भूमिका निभाते हैं। लड़की को पढ़ाने का फैसला इन बातों से प्रभावित होता है।

घर से स्कूल की दूरी भी लड़कों की तुलना में लड़की की पढ़ाई के अवसर को निर्धारित करती है। ज़्यादा दूरी को परिवार लड़की की सुरक्षा के लिए एक खतरा मानते हैं। ज़्यादा दूरी का मतलब लड़की द्वारा घरेलू कार्यों में कम हाथ बँटा पाना भी है। पाकिस्तान के सिंध इलाके में 31 फीसदी गाँवों में सिर्फ़ एक कि.मी. के अंदर प्राथमिक स्कूल हैं। यह सिंध राज्य में 13.1 फीसदी ग्रामीण महिला साक्षरता दर का एक बहुत बड़ा कारण है। तमिलनाडु के 88 फीसदी रिहायशी इलाकों में एक कि.मी. के अंदर प्राथमिक विद्यालय उपलब्ध हैं। नतीजतन इस राज्य में 73.7 फीसदी पुरुष साक्षरता दर की तुलना में महिला साक्षरता दर 51.3 फीसदी है। तमिलनाडु के अध्ययन दर्शाते हैं कि एक कि.मी. से ज़्यादा की दूरी बढ़ने का परिणाम यह होता है कि स्कूल जानेवाली लड़कियों की संभावित संख्या में दो फीसदी की कमी आ जाती है। ग्रामीण नेपाल में प्रति कि.मी. की दूरी बढ़ने का मतलब लड़कियों की संख्या में ढाई फीसदी की कमी है। कम दूरी के साथ महिला अध्यापिका का पढ़ाना भी लड़कियों की शिक्षा में मददगार साबित होता है। भारत में केरल एक ऐसा राज्य है, जहाँ सबसे ज़्यादा लड़कियों का नामांकन हुआ है। वहाँ 60 फीसदी अध्यापिकाएँ हैं। इस राज्य में परिवहन व्यवस्था विकसित, सुरक्षित और विश्वसनीय है। इसलिए वहाँ महिलाएँ शहरों से गाँवों में पढ़ाने जाते वक्त हिचकिचाती नहीं हैं। बिहार और उत्तर प्रदेश में यह नामांकन बहुत कम है और वहाँ 20 फीसदी महिला अध्यापक हैं। ग्रामीण इलाकों में महिला अध्यापकों की बहुत कमी है। सड़कों की खस्ता हालत, सीमित यातायात सुविधाएँ और अध्यापन प्रशिक्षण संस्थाओं की कमी भी एक ग्रामीण औरत के अध्यापन प्रशिक्षण लेने में रुकावट बनती है। नेपाल में केवल 10 फीसदी प्राथमिक अध्यापक हैं और बांग्लादेश में यह संख्या 8 फीसदी है, लेकिन वहाँ इस भेदभाव को खत्म करने के लिए एक सार्थक पहल की गई है। वहाँ अध्यापन प्रशिक्षण लेने वालों में कम-से-कम 60 फीसदी महिलाएँ होंगी।

यह तो रही दक्षिण एशिया की स्थिति। अब एक नज़र भारत में नारी शिक्षा की स्थिति पर डाल लेते हैं। इसके लिए उनका जनांकिकीय अध्ययन आवश्यक हो जाता है।

भारत में कुल महिला जनसंख्या में 14 वर्ष की बालिकाओं की संख्या का प्रतिशत 1901 में 30 था, जो 1971 में बढ़कर 41.9 प्रतिशत हो गया, अर्थात् 1971 में 100 महिलाओं में लगभग 42 लड़कियाँ 14 वर्ष की आयु की थीं। 1971 तक कुल महिला जनसंख्या में 14 वर्ष तक की बालिकाओं का प्रतिशत लगातार बढ़ा है।

1981 की जनगणना के अनुसार 13.16करोड़

बालिकाएँ 14 वर्ष की आयु की हैं। यह संख्या इटली (5.8 करोड़) तथा ब्रिटेन (5.5 करोड़) की कुल जनसंख्या के योग के लगभग बराबर है, अर्थात् जितनी बालिकाएँ हमारे देश में 14 वर्ष की हैं, उतनी कुल आबादी इटली तथा ब्रिटेन की मिलकर है।

बालिकाओं की पारिवारिक समस्याएँ

बच्चों के व्यक्तित्व के विकास में परिवार का महत्वपूर्ण स्थान होता है, लेकिन उपयुक्त वातावरण के अभाव में लड़कियों के व्यक्तित्व का विकास उपयुक्त नहीं हो पाता है। अनेक ऐसी सामाजिक, आर्थिक समस्याएँ हैं, जो बालिकाओं के विकास में बाधक हैं। लड़कियाँ पर्दा प्रथा के कारण जूनियर हाईस्कूल तक की परीक्षा पास करके घर बैठ जाती हैं। विशेष रूप से मुस्लिम परिवारों में अधिकांश बालिकाओं को माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने का सौभाग्य नहीं मिलता, क्योंकि लड़कियाँ बड़े होने के साथ पर्दे में रहने को भी बाध्य होती हैं। परिवार अब भी सहशिक्षा को उचित नहीं समझता। लड़कों की तुलना में लड़कियों को परिवार से बाहर निकलकर दूसरों से पूछताछ करके शैक्षिक कठिनाईयों को दूर करने पर भी आपत्ति की जाती है। इस प्रकार लड़कियों की गतिविधियों पर सामाजिक बंदिश स्कूल छोड़ने का कारण बनती है।

उत्तर प्रदेश के बस्ती ज़िले में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार 73 प्रतिशत छात्राओं का कहना है कि उनके माता-पिता उनकी शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे स्वयं भी शिक्षा के प्रति उदासीन हो जाती हैं और उनमें हीनता की भावना का विकास होता है। बहुत-सी लड़कियाँ स्वयं को परिवार पर भार समझकर स्वयं पढ़ाई छोड़ देती हैं, ताकि उनके माँ-बाप को उनकी पढ़ाई पर अधिक धन खर्च न करना पड़े।

लड़कियों को उनके माता-पिता यह समझाते हुए पाए जाते हैं कि वे लड़कियाँ हैं, लड़कियों को शांत, सौम्य और सहनशील होना चाहिए। इसलिए 10-12 वर्ष की होने पर उनके उठने-बैठने, हँसने-बोलने, उछलकूद मचाने आदि पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है। लड़के-लड़कियों को साथ-साथ पढ़ने नहीं दिया जाता। आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में सहशिक्षा को अच्छा नहीं समझा जाता। माता-पिता लड़की को पढ़ने के लिए दूर भेजना या छात्रावास में रखना भी असुरक्षित समझते हैं।

भारत में 11.92 प्रतिशत लड़कियों की शादी 10 से 14 वर्ष की आयु में और 42.11 प्रतिशत लड़कियों की शादी 15 से 19 वर्ष की आयु में हो जाती है। मध्य हिमालय की महिलाओं पर कुमायूँ क्षेत्र में किए गए एक सर्वेक्षण में पाया गया कि 600 महिलाओं में से 251 लड़कियों की शादी 11 से 15 वर्ष की आयु में हुई, 208 की 16 से 20 वर्ष की आयु में, 88 की 5 से 10 वर्ष की आयु में और 9 की 26 वर्ष की आयु के बीच हुई, अर्थात् अधिकांश लड़कियों की शादी 11 से 15 वर्ष की आयु के बीच हुई। पढ़ाई का संबंध लड़कियों के विवाह से है, क्योंकि बहुत कम लड़कियाँ ही विवाह के पश्चात् पढ़ाई जारी रख पाती हैं। इस

प्रकार विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में कम उम्र में विवाह होने से लड़कियों की पढ़ाई भी जल्दी छूट जाती है।

इतना ही नहीं भाई-बहनों को तैयार करना, उन्हें समय से विद्यालय भेजना आदि कार्य भी लड़कियों को ही करने पड़ते हैं। इस प्रकार

कक्षा एक से आठ तक छात्राओं का प्रवाह तथा कक्षा में बने रहने की दर

कक्षा	1	2	3	4	5	6	7	8
नामांकन का प्रतिशत	100	69.72	55.63	44.26	34.74	26.49	22.45	18.04

स्रोत *- शिक्षा और संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली*

उत्तर प्रदेश के बस्ती ज़िले के एक सर्वेक्षण के अनुसार ग्रामीण लड़कियों की आर्थिक स्थिति दयनीय है। 38 प्रतिशत छात्राओं का कहना है कि उन्हें समय पर पुस्तकें, कॉपियाँ आदि नहीं मिल पाती हैं। कभी-कभी तो घर में भोजन तथा वस्त्र की समस्या भी रहती है। छात्राओं ने यह भी बताया कि कभी-कभी यूनिफॉर्म के अभाव में उन्हें विद्यालय से अनुपस्थित होना पड़ता है।

कुछ व्यक्तियों का कहना था कि स्कूल जानेवाले बच्चों के कपड़े अच्छे होने चाहिए। उनके लिए महँगी किताबें, कॉपियों आदि की आवश्यकता होती है। इसलिए स्कूल, कॉलेज तक लड़की को भेजना महँगा होता है।

माध्यमिक कक्षा में आने के समय लड़कियाँ 13 वर्ष के लगभग हो जाती हैं और माता-पिता उनसे यह आशा रखने लगते हैं कि लड़कियाँ घर के कामों में हाथ बटाएँ। भोजन बनाने से लेकर कपड़े धोना, बर्तन साफ़ करना, छोटे भाई-बहनों की देखभाल करना आदि सभी कार्य लड़कियों को करने पड़ते हैं। भाई-बहनों की संख्या अधिक होने के कारण पढ़नेवाली लड़कियाँ काम के बोझ से लदी रहती हैं। सारा काम माँ पढ़नेवाली लड़कियों पर डाल देती हैं, जिससे कभी-कभी उक्त परिस्थितियों से ऊबकर वे पढ़ाई छोड़ देती हैं। समय पर परीक्षा की तैयारी नहीं कर पातीं और न ही विद्यालय समय पर पहुँच पाती हैं। लड़कियों को घर में सहायक के रूप में उपयोगी समझा जाता है। कभी-कभी पूरी प्राथमिकशाला में जहाँ पहली कक्षा से पाँचवीं कक्षा तक कक्षाएँ लगती हैं, केवल एक ही शिक्षिका होती है। वह विशेषत: पाँचवीं कक्षा की पढ़ाई पर ध्यान देती हैं। अन्य बच्चों पर कम ध्यान दे पाती हैं। इसलिए उन्हें सही शिक्षण नहीं मिल पाता।

ऐसी स्थिति में माँ-बाप सोचते हैं कि हम लड़कियों को स्कूल क्यों भेजें। घर में रहेंगी तो काम करेंगी। उनके लिए भी स्कूल कोई आकर्षण नहीं होता। वे पिटने की वजह से भी स्कूल जाने से कतराती हैं। माता-पिता से दूर रहना नहीं चाहतीं, किसी शिक्षिका या शिक्षक से डरती हैं, उन प्रतिबंधों को सहन नहीं कर सकतीं जो स्कूल में लगाए जाते हैं। इस प्रकार लड़कियों के शिक्षण में अनेक पारिवारिक मान्यताएँ एवं परिस्थितियाँ बाधक हैं, जो उन्हें

अनपढ़ रहने या पढ़ाई छोड़ने के लिए बाध्य कर देती हैं।

मध्य हिमालय की 600 महिलाओं के एक सर्वेक्षण में यह पाया गया कि उसमें साक्षर महिलाओं की संख्या 226 थी, जिनमें से 89 ने कक्षा पाँच तक पढ़कर छोड़ दिया। 58 ने पाँचवीं के बाद छोड़ दिया। 7 ने बारहवीं पढ़कर छोड़ दिया तथा 24 लड़कियों ने दसवीं पढ़कर छोड़ दिया तथा 14 लड़कियाँ ऐसी थीं, जो कक्षा बारहवीं तक पढ़ी थीं।

भारत में 100 लड़कियों में से 18.04 प्रतिशत लड़कियाँ ही कक्षा 8 में पहुँच पाई हैं। इस प्रकार कक्षा एक से आठ तक पहुँचते-पहुँचते 100 से 80 लड़कियाँ शिक्षा व्यवस्था से बाहर निकल जाती हैं अर्थात् 20 ही आठवीं कक्षा में पहुँच पाती हैं।

1981 में भारत में 6 से 11 वर्ष के आयु समूह में से 45 प्रतिशत से ऊपर, 12 से 14 वर्ष के आयु समूह में 75 प्रतिशत से ऊपर और 15 से 17 वर्ष के आयु समूह में से 85 प्रतिशत से ऊपर लड़कियाँ स्कूल नहीं जाती हैं। 17 से 23 वर्ष के आयु समूह में से विश्वविद्यालय में शिक्षित लड़कियों का हिस्सा करीब तीन प्रतिशत है।

समस्या का समाधान - दूरस्थ शिक्षा

उक्त परिस्थितियों में पढ़ाई जारी रखने का एकमात्र विकल्प है- दूरस्थ शिक्षा। जो किन्हीं कारणों से शिक्षा का लाभ प्राप्त नहीं कर पाते या असमर्थ रहते हैं, उन्हें यह शिक्षा विद्यालय परिसर से बाहर दी जाती है तथा यह समय और स्थान की सीमाओं से मुक्त है। इसमें शिक्षण में मुद्रित और अमुद्रित पाठ्यसामग्री का प्रयोग किया जाता हैं। इसमें लड़कियों की सामाजिक एवं वित्तीय परिस्थितियाँ कैसी भी हों, वे सरलता से शिक्षा ग्रहण कर सकती हैं। जो लड़कियाँ किसी व्यवसाय में लगी हैं या जिनका विवाह हो चुका है या जो किसी अन्य कारण से अपनी शिक्षा पूरी नहीं कर सकी हैं और जो शिक्षा को जीवनपर्यंत जारी रखना चाहती हैं, वे दूरस्थ शिक्षा प्रणाली से अपनी रुचि, अपने समय तथा गति के अनुसार शिक्षा पा सकती हैं। अधिकांश शिक्षा विशेषज्ञों का मत है कि दूरस्थ शिक्षा का शैक्षिक दर्शन भी वही है, जो परंपरागत शिक्षा का है। आज विश्व के अनेक देशों में यह बड़ी लोकप्रिय हो रही है। यह विद्या उन लोगों के लिए भी बहुत उपयोगी है, जो बीच में शिक्षा की मुख्य धारा से विरक्त हो गए हैं या अर्थिक, सामाजिक या अन्य कारणों से जिन्हें विद्यालय छोड़ देना पड़ा है। दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से लड़कियों और महिलाओं को घर बैठे शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

❑❑❑